JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

Adharājan Ki Haryanvi Saang-Shaili Raganian: Pingal Shastra Evam Lok-Sanskritik Pariprekshya Mein Ek Vishleshanatmak Adhyayan (Ragni 9–16 Ke Sandarbh Mein)

अधराजण की हरियाणवी सांग-शैली रागणियाँ: पिंगल शास्त्र एवं लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (रागणी 9–16 के संदर्भ में)

लेखक: आनन्द कुमार आशोधिया
स्वतंत्र शोधकर्ता एवं पूर्व वारंट ऑफिसर, भारतीय वायु सेना
पता: शाहपुर तुर्क, जिला सोनीपत, हरियाणा – 131001
ईमेल: ashodhiya68@gmail.com

Abstract

This study presents a focused analytical examination of the Haryanvi Saang-style Rāgaṇīs in the poetic work Adharājan by Anand Kumar Ashodhiya, interpreted through the dual frameworks of Pingal prosody and folk-cultural hermeneutics. Concentrating on Rāgaṇīs 9–16, the research explores how indigenous metrical structures, performative conventions, and socio-political narratives converge to generate a distinctive literary-oral aesthetic within North Indian folk traditions.

Situated within the Haryanvi Saang tradition—a performative folk theatre integrating music, dialogue, and narrative—the study employs a qualitative, text-centric methodology to analyse mātrā-structure, yati-division, and tukānt patterns. The findings reveal a flexible yet systematic adherence to Pingal principles, characterized by metrical ranges of 24–30 mātrās and dominant yati patterns such as 6+6+6+6 and 6+8+8+6. Unlike rigid classical metrics, these compositions demonstrate adaptive prosody aligned with performative delivery and audience engagement.

Thematically, the selected Rāgaṇīs foreground the interplay of power, gender, morality, and राजनीति through historically inflected narratives. The character of Raskapoor exemplifies emergent female agency within feudal structures, while Krishna Kunwari and Fateh Kanwar articulate contrasting paradigms of sacrifice and सत्ता-संघर्ष.

The study further highlights the role of refrain (tek) as a rhythmic and semantic anchor, alongside the use of anuprāsa, rūpaka, and layered imagery that enhance mnemonic retention and performative impact.

It concludes that the Rāgaṇīs of Adharājan represent a dynamic confluence of classical prosody and folk poetics, functioning as repositories of cultural memory and contributing significantly to Indian literary, folkloric, and performance studies.

Keywords

Haryanvi Saang, Rāgaṇī Tradition, Pingal Prosody, Folk Poetics, Oral Performance, Metrical Analysis, Gender and Power

सारांश

यह शोध-पत्र 'अधराजण' की हरियाणवी सांग-शैली की रागणियों (विशेषतः रागणी 9–16) का पिंगल शास्त्र तथा लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में संक्षिप्त किंतु गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार पारंपरिक छंदशास्त्रीय सिद्धांत लोक-काव्य की जीवंत परंपरा में रूपांतरित होकर एक विशिष्ट काव्यात्मक और प्रदर्शनपरक अभिव्यक्ति का निर्माण करते हैं।

हरियाणवी सांग को एक समेकित लोक-नाट्य रूप के रूप में स्थापित करते हुए यह शोध गुणात्मक एवं पाठ-विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाता है। चयनित रागणियों में मात्रा-संरचना (24–30 मात्राएँ), यति-विन्यास (6+6+6+6 तथा 6+8+8+6) तथा तुकांत योजना का परीक्षण यह दर्शाता है कि पिंगल शास्त्र का अनुपालन लचीले और संदर्भानुकूल रूप में किया गया है, जो मंचीय प्रस्तुति और श्रोता-सम्प्रेषण के अनुकूल है।

विषयवस्तु की दृष्टि से ये रागणियाँ सत्ता, स्त्री-अस्मिता, नैतिकता और कूटनीति के जटिल आयामों को उद्घाटित करती हैं। रसकपूर का चरित्र स्त्री-एजेंसी का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है, जबकि कृष्णा कुँवरी और फतेहकँवर त्याग और सत्ता-संघर्ष के भिन्न प्रतिमानों को अभिव्यक्त करती हैं।

टेक की पुनरावृत्ति, अनुप्रास, रूपक तथा अन्य अलंकारिक प्रयोग रचनाओं को लयात्मक, स्मरणीय और प्रभावपूर्ण बनाते हैं।

निष्कर्षतः, यह अध्ययन स्थापित करता है कि 'अधराजण' की रागणियाँ पिंगल शास्त्र और लोक-काव्य के मध्य एक सृजनात्मक सेतु का निर्माण करती हैं तथा भारतीय लोक-साहित्य और प्रदर्शन-अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्द

हरियाणवी सांग, रागणी परंपरा, पिंगल छंदशास्त्र, लोक काव्य, मौखिक परंपरा, छंद विश्लेषण, स्त्री-अस्मिता और सत्ता

अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं संदर्भ

"इस शोध-पत्र में अपनाई गई विश्लेषणात्मक पद्धति का आधार लेखक के पूर्ववर्ती अध्ययनों में निहित है, जिनमें हरियाणवी रागणी परंपरा के विभिन्न चरणों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है (आशोधिया, 2026a; 2026b)।

भारतीय साहित्यिक परंपरा स्वभावतः बहुस्तरीय, बहुभाषिक तथा सांस्कृतिक विविधताओं से समृद्ध रही है, जिसमें शास्त्रीय और लोक—दोनों धाराएँ परस्पर अंतः क्रियाशील रूप में विकसित होती रही हैं। एक ओर संस्कृत-आधारित काव्यशास्त्र और पिंगल-छंदशास्त्र ने काव्य-रचना के लिए संरचनात्मक अनुशासन, मात्रिक विन्यास तथा सौंदर्य बोध के मानदंड स्थापित किए, वहीं दूसरी ओर लोक-साहित्य ने इन्हीं सिद्धांतों को अपने अनुभव-संसार, सामाजिक यथार्थ और प्रदर्शन-परंपरा के अनुरूप रूपांतरित करते हुए जीवंत अभिव्यक्तियाँ निर्मित कीं। इस द्वंद्वात्मक किंतु सह-अस्तित्वशील संबंध को समझना समकालीन साहित्यिक विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण आधार बन चुका है, जैसा कि लेखक के पूर्ववर्ती अध्ययनों (अधराजण, रागणी 1–8) में प्रतिपादित किया जा चुका है।

इसी परिप्रेक्ष्य में हरियाणवी सांग-परंपरा उत्तर भारतीय लोक-नाट्य और काव्य-संरचना का एक विशिष्ट और समन्वित रूप प्रस्तुत करती है, जिसमें साहित्य, संगीत, अभिनय और सामाजिक विमर्श का अंतः संबंध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। सांग केवल एक मनोरंजनात्मक विधा न होकर, क्षेत्रीय इतिहास, सामूहिक स्मृति, नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक संरचनाओं का संवाहक भी है। इस परंपरा की रागणियाँ इसकी काव्यात्मक आत्मा के रूप में कार्य करती हैं, जो छंद, लय, तुक, टेक और अलंकारों के माध्यम से न केवल श्रव्य सौंदर्य का सृजन करती हैं, बल्कि कथ्य, भाव और विचार की प्रभावी संप्रेषणीयता भी सुनिश्चित करती हैं। पूर्ववर्ती शोध (रागणी 1–8) में यह स्थापित किया जा चुका है कि हरियाणवी रागणियाँ पिंगल-छंदशास्त्र के साथ संवाद स्थापित करती हुई भी अपनी लोक-प्रेरित स्वतंत्रता को बनाए रखती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन 'अधराजण' नामक सांग-काव्य के रागणी-खंड (9–16) पर केंद्रित है, जो ऐतिहासिक-लोकगाथात्मक तत्वों से निर्मित एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक पाठ के रूप में उभरता है। इस खंड में राजस्थान तथा उत्तर भारत के राजनैतिक-सांस्कृतिक परिवेश, राजपूती मर्यादा, सत्ता-संघर्ष, कूटनीति और स्त्री-अस्मिता जैसे जटिल विषयों का सशक्त चित्रण मिलता है। विशेषतः यह खंड कथा के उस निर्णायक मोड़ को प्रस्तुत करता है, जहाँ व्यक्तिगत भावनाएँ और राजनैतिक दायित्व परस्पर टकराते हुए व्यापक सामाजिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

इस संदर्भ में रसकपूर, कृष्णा कुँवरी और फतेहकँवर—ये तीनों स्त्री पात्र अध्ययन के केंद्र में उभरते हैं, जो लोक-काव्य में स्त्री-अनुभव और सक्रियता के विविध आयामों को उद्घाटित करते हैं। रसकपूर का चरित्र, जो प्रारंभ में एक नर्तकी के रूप में प्रस्तुत होता है, क्रमशः 'अधराजण' के रूप में विकसित होकर राजनैतिक निर्णय-प्रक्रिया में सक्रिय हस्तक्षेप करता है। यह रूपांतरण लोक-परंपरा में स्त्री की परंपरागत सीमाओं के पुनर्परिभाषण का संकेत देता है। इसी प्रकार, कृष्णा कुँवरी का प्रसंग आत्मबलिदान, राजधर्म और स्त्री-स्वाभिमान के अंतर्संबंधों को उद्घाटित करता है, जहाँ उसका निर्णय सामूहिक हित और युद्ध-निवारण की दृष्टि से एक नैतिक विकल्प के रूप में उभरता है। इसके विपरीत, फतेहकँवर का चरित्र दरबारी राजनीति, ईर्ष्या और सत्ता-संघर्ष के मनोवैज्ञानिक आयामों को अभिव्यक्त करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि लोक-काव्य आदर्शवाद के साथ-साथ मानवीय जटिलताओं को भी समाहित करता है।

छंदात्मक दृष्टि से, हरियाणवी रागणियाँ पिंगल-परंपरा से प्रभावित होते हुए भी उससे पूर्णतः आबद्ध नहीं हैं। इनमें मात्रा-विन्यास, यति-प्रणाली और तुकांत संरचना का एक लचीला तथा अनुकूलन शील रूप दृष्टिगोचर होता है, जो प्रदर्शन की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। लेखक के पूर्व शोध (रागणी 1-

8) में भी यह प्रतिपादित किया गया है कि यह लचीलापन लोक-काव्य की एक विशिष्ट पहचान है, जहाँ शास्त्रीय अनुशासन और लोक-स्वतंत्रता के मध्य एक सृजनात्मक संतुलन स्थापित होता है।

समकालीन साहित्यिक अनुसंधान में लोक-साहित्य, प्रदर्शन-केंद्रित अध्ययन तथा क्षेत्रीय भाषाई परंपराओं के अंतर्संबंधों पर बढ़ता हुआ ध्यान इस प्रकार के अध्ययनों की प्रासंगिकता को और अधिक सुदृढ़ करता है। पिंगल-छंदशास्त्र जैसे पारंपरिक ज्ञान-तंत्र का लोक-रचनाओं के संदर्भ में पुनर्पाठ, न केवल साहित्यिक इतिहास की पुनर्समीक्षा में सहायक है, बल्कि यह भी प्रतिपादित करता है कि भारतीय काव्य-परंपरा में शास्त्र और लोक के बीच कोई कठोर विभाजन नहीं है, अपितु एक निरंतर संवाद और अंतःक्रिया विद्यमान है।

अतः यह अध्ययन 'अधराजण' की रागणियों (9–16) के माध्यम से इसी संवाद की गहन पड़ताल करता है, जहाँ छंद, कथ्य और प्रदर्शन एकीकृत होकर एक समग्र सांस्कृतिक पाठ का निर्माण करते हैं। इस प्रकार, यह पृष्ठभूमि न केवल शोध के औचित्य को स्पष्ट करती है, बल्कि यह भी रेखांकित करती है कि हरियाणवी सांग-परंपरा जैसे लोक रूपों का गंभीर अध्ययन भारतीय साहित्य और संस्कृति की व्यापक समझ के लिए अत्यंत आवश्यक और सार्थक है।

साहित्य समीक्षा

हरियाणवी सांग-परंपरा, पिंगल शास्त्र तथा राजस्थानी-हरियाणवी रागणियों की अंतर्वस्तु पर उपलब्ध साहित्य का अवलोकन यह संकेत करता है कि इस क्षेत्र में अभी भी समन्वित, छंदशास्त्रीय तथा सांस्कृतिक विश्लेषण की पर्याप्त संभावनाएँ शेष हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में पिंगल परंपरा का आधार प्राचीन ग्रंथों में निहित है, जहाँ छंद-विधान, मात्रा-गणना और लय-संरचना को व्यवस्थित रूप से प्रतिपादित किया गया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भारतीय काव्यधारा के विकास में लोक और शास्त्र के अंतर्संबंध को रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि लोक-परंपराएँ शास्त्रीय संरचनाओं को केवल ग्रहण ही नहीं करतीं, बल्कि उन्हें अपने सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभवों के अनुरूप पुनर्सृजित भी करती हैं। इसी प्रकार नामवर सिंह ने साहित्य को सामाजिक संरचना का दर्पण मानते हुए यह प्रतिपादित किया कि लोकसाहित्य में निहित अभिव्यक्तियाँ किसी विशिष्ट वर्ग की नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना की प्रतिनिधि होती हैं।

हरियाणवी सांग-शैली पर केंद्रित अध्ययनों में लोकनाट्य, गीत और संवादात्मक अभिव्यक्ति के अंतर्संबंधों को प्रमुखता दी गई है। विद्वानों जैसे रामनिवास 'मानव' तथा हरियाणा लोक-साहित्य के अन्य शोधकर्ताओं ने सांग-परंपरा को एक जीवंत प्रदर्शनकारी कला के रूप में विश्लेषित किया है, जहाँ रागणियाँ केवल गेय रचनाएँ नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद का माध्यम भी हैं। इन अध्ययनों में यह स्पष्ट हुआ है कि सांग की रागणियाँ छंद की कठोर शास्त्रीयता से बँधी होने के बावजूद लचीली और प्रसंगानुकूल संरचना अपनाती हैं, जिससे वे जन-संवाद में अधिक प्रभावी बनती हैं। तथापि, इन अध्ययनों में पिंगल शास्त्र की दृष्टि से रागणियों के सूक्ष्म छंद-विन्यास का विश्लेषण अपेक्षाकृत सीमित रहा है।

राजस्थानी और उत्तर भारतीय ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित काव्य-रचनाओं के संदर्भ में इतिहासकारों जैसे गौरीशंकर हीराचंद ओझा तथा जेम्स टॉड ने राजपूताना की राजनीतिक संरचना, सामंती संबंधों और स्त्री-भूमिका पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उनके कार्य यह संकेत करते हैं कि राजदरबारों के भीतर स्त्रियाँ केवल परिधीय पात्र नहीं थीं, बल्कि अनेक अवसरों पर वे राजनीतिक निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभाती थीं। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लोककाव्य में रूपांतरित करते हुए रागणियाँ सत्ता, प्रेम, त्याग और षड्यंत्र जैसे

विषयों को सांगीतिक और काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करती हैं। परंतु इतिहास लेखन और लोककाव्य के बीच की इस अंतःक्रिया का विश्लेषण प्रायः विषयवस्तु तक सीमित रहा है; छंद, लय और अलंकारिक संरचना के साथ इसका समन्वित अध्ययन अपेक्षित है।

लोक सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में ए. के. रामानुजन और के. के. मिश्रा जैसे विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया है कि भारतीय लोक परंपराएँ बहुस्तरीय अर्थ-संरचनाओं से युक्त होती हैं, जिनमें एक ही कथा अनेक सांस्कृतिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित होती रहती है। इसी दृष्टिकोण से यदि हरियाणवी रागणियों का अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि वे केवल ऐतिहासिक घटनाओं का पुनर्कथन नहीं करतीं, बल्कि समकालीन सामाजिक मूल्यों, नैतिक द्वंद्वों और सामुदायिक स्मृतियों को भी अभिव्यक्त करती हैं।

उपरोक्त साहित्यिक एवं ऐतिहासिक विमर्शों के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि हरियाणवी सांग-शैली की रागणियों, विशेषतः "अधराजण" शीर्षक अंतर्गत रागणी 9–16, का ऐसा अध्ययन अपेक्षित है जो पिंगल शास्त्र की तकनीकी दृष्टि और लोक-सांस्कृतिक व्याख्या—दोनों को समान महत्व दे। वर्तमान अध्ययन इसी शोध-रिक्ति को संबोधित करने का प्रयास करता है, जहाँ छंद-विन्यास, अलंकारिकता, भाव-संरचना और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संदर्भों का समेकित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, ताकि लोककाव्य और शास्त्रीय काव्यशास्त्र के अंतर्संबंधों को अधिक व्यापक और गहन रूप में समझा जा सके।

शोध पद्धति

"इस अध्ययन में प्रयुक्त पद्धति लेखक के पूर्व प्रकाशित शोध कार्यों के अनुरूप है, जिनमें पिंगल शास्त्र के आलोक में रागणियों का पाठ-विश्लेषण किया गया है (आशोधिया, 2026a; 2026b)।"

प्रस्तुत अध्ययन एक गुणात्मक तथा व्याख्यात्मक अनुसंधान-पद्धति पर आधारित है, जिसका प्रमुख उद्देश्य हरियाणवी सांग-शैली की रागणियों—विशेषतः 'अधराजण' शीर्षक अंतर्गत रागणी 9–16—का पिंगल-शास्त्रीय एवं लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समन्वित और गहन विश्लेषण करना है। अनुसंधान का मूल आधार पाठ-विश्लेषण है, जिसमें प्राथमिक स्रोत के रूप में रागणियों के प्रामाणिक पाठ का चयन किया गया है। इन पाठों का सूक्ष्म परीक्षण करते हुए उनके छंद-विन्यास, मात्रा-संरचना, यति-व्यवस्था, तुक-योजना तथा अलंकारिक प्रयोगों का विवेचन पिंगल-शास्त्र के सिद्धांतों के आलोक में किया गया है। साथ ही यह भी विश्लेषित किया गया है कि लोक-रचनाओं में शास्त्रीय छंद-नियमों का अनुपालन किस सीमा तक होता है तथा किन स्थलों पर रचनात्मक विचलन के माध्यम से अभिव्यक्ति को अधिक प्रभाव संपन्न बनाया गया है। इस संदर्भ में लेखक के पूर्ववर्ती अध्ययनों में प्रतिपादित निष्कर्षों का संदर्भ लेकर वर्तमान विश्लेषण को सैद्धांतिक दृढ़ता प्रदान की गई है, जिससे 'अधराजण' की रागणियों के छंदगत स्वरूप का तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य विकसित हो सके।

अनुसंधान-पद्धति में ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का भी समावेश किया गया है, जिसके अंतर्गत रागणियों में उल्लिखित घटनाओं, पात्रों और प्रसंगों का अध्ययन उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों तथा स्थापित इतिहास-बोध के संदर्भ में किया गया है। इस प्रकार अध्ययन केवल साहित्यिक संरचना तक सीमित न रहकर उन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का भी अन्वेषण करता है, जिनमें ये रागणियाँ रची और प्रस्तुत की गईं। विशेषतः राजपूताना के सामंती ढाँचे, स्त्री-भूमिका, सत्ता-संघर्ष और कूटनीतिक संबंधों का

विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि रागणियाँ अपने समय के यथार्थ को किस प्रकार प्रतिबिंबित करती हैं और साथ ही उसे सांस्कृतिक अर्थ प्रदान करती हैं।

लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समाहित करने के लिए नृवंशशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक-अध्ययनपरक दृष्टियों का भी आंशिक उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत हरियाणवी सांग-परंपरा की प्रस्तुति-शैली, गेयता, संवादात्मकता तथा श्रोता-समुदाय के साथ उसके अंतः क्रियात्मक संबंधों का विश्लेषण किया गया है। यह स्थापित किया गया है कि रागणियाँ केवल लिखित पाठ नहीं हैं, बल्कि वे एक जीवंत प्रदर्शनकारी परंपरा का अंग हैं, जहाँ लय, स्वर, भावाभिव्यक्ति और सामूहिक सहभागिता मिलकर अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार अध्ययन में पाठ और प्रदर्शन के अंतर्संबंध को एक केंद्रीय विश्लेषणात्मक आयाम के रूप में ग्रहण किया गया है।

तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत विभिन्न रागणियों के छंद, भाव और विषय-वस्तु की परस्पर तुलना की गई है, जिससे उनकी संरचनात्मक समानताओं और भिन्नताओं को स्पष्ट किया जा सके। साथ ही, पिंगल-शास्त्र के पारंपरिक सिद्धांतों और लोक-काव्य के व्यवहारिक रूपों के मध्य अंतःक्रिया को समझने के लिए एक समन्वित सैद्धांतिक रूपरेखा का निर्माण किया गया है। इस रूपरेखा में लेखक के पूर्व प्रकाशित शोध-कार्य—विशेषतः 'अधराजण' (रागणी 1–8) संबंधी अध्ययनों—से प्राप्त निष्कर्षों का पुनर्संदर्भण करते हुए वर्तमान अध्ययन को निरंतरता और अकादमिक संगति प्रदान की गई है।

इस प्रकार, प्रस्तुत शोध-पद्धति बहुआयामी दृष्टिकोण को अपनाती है, जिसमें पाठ-विश्लेषण, ऐतिहासिक संदर्भ, सांस्कृतिक व्याख्या और तुलनात्मक विवेचन—इन सभी को एकीकृत करते हुए रागणी 9–16 का समग्र और गहन अध्ययन किया गया है। यह पद्धति न केवल रागणियों की साहित्यिक संरचना को स्पष्ट करती है, बल्कि उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अर्थ-क्षेत्र को भी व्यापक रूप में उद्घाटित करती है, जिससे हरियाणवी सांग-परंपरा के अध्ययन को एक सुदृढ़ अकादमिक आधार प्राप्त होता है।

कथात्मक एवं साहित्यिक विश्लेषण

"अधराजण शीर्षक के अंतर्गत रागणी 9–16 का कथात्मक एवं साहित्यिक विश्लेषण एक बहुस्तरीय विमर्श प्रस्तुत करता है, जिसमें इतिहास, लोकस्मृति, स्त्री-अनुभूति और सत्ता-संघर्ष का जटिल अंतर्संबंध उद्घाटित होता है। इन रागणियों की कथा-रचना केवल घटनाओं का अनुक्रम नहीं है, बल्कि यह लोककाव्य की उस परंपरा का सशक्त उदाहरण है, जहाँ ऐतिहासिक प्रसंगों को भावात्मक पुनर्संरचना के माध्यम से जीवंत और संवेदनशील बनाया जाता है। रागणी 9–12 (जो इस अध्ययन की व्यापक पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं) से लेकर रागणी 13–16 तक कथा क्रमिक रूप से एक ऐसी नाटकीय तीव्रता प्राप्त करता है, जिसमें व्यक्तिगत प्रेम, राजनीतिक विवेक और सामाजिक मर्यादा एक-दूसरे से टकराते हुए दिखाई देते हैं।

अधराजण की रागणियों की शृंखला में रागनी 9 से 12 तक का विस्तार कथात्मक उत्कर्ष, सांस्कृतिक संघर्ष, तथा कलात्मक परिपक्वता के उस चरण को उद्घाटित करता है जहाँ व्यक्तिगत प्रेम, सामाजिक संरचना, और सांगीतिक साधना एक जटिल अंतर्संबंध में विकसित होते हैं। इन रागणियों में न केवल रसकपूर के जीवन का निर्णायक मोड़ चित्रित होता है, अपितु यह भी स्पष्ट होता है कि लोकनाट्य परंपरा किस प्रकार व्यक्तिगत अनुभवों को सामूहिक सांस्कृतिक विमर्श में रूपांतरित करती है। इस खंड में प्रस्तुत रागणियाँ शृंगार, वीर,

करुण और व्यंग्य—इन सभी रसों के सशक्त समन्वय के माध्यम से हरियाणवी सांग-परंपरा के बहुआयामी स्वरूप को साकार करती हैं।

रागनी 9 में वर्णित **"सुण सुमन प्यारी, तू कर तैय्यारी, आज मिलण की रात"** जैसी पंक्तियाँ सखी-संवाद परंपरा की एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं, जहाँ रसकपूर अपने अंतरंग भावों को अपनी सखी के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। यह शैली भारतीय काव्यशास्त्र में नायिका-भेद और सखी-संवाद की परंपरा से गहराई से जुड़ी हुई है। **"मनै बान बिठादे, मेरै तेल चढ़ादे"** तथा **"मनै चूनर उढ़ादे, घूंघट करवादे"** जैसे पद केवल श्रृंगारिक क्रियाओं का वर्णन नहीं करते, बल्कि वे सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीकों के रूप में स्त्री के वैवाहिक रूपांतरण की प्रक्रिया को भी उद्घाटित करते हैं। यहाँ श्रृंगार केवल बाह्य सज्जा नहीं, बल्कि आत्म-समर्पण और प्रेम की आध्यात्मिक तैयारी का संकेत बन जाता है। **"कटै बिफता के फन्द"** जैसे लोक मुहावरे जीवन के संघर्षों से मुक्ति की आकांक्षा को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करते हैं, जिससे यह रागनी केवल व्यक्तिगत प्रसंग न रहकर एक सार्वभौमिक स्त्री-अनुभव का प्रतिनिधित्व करने लगती है।

इसके विपरीत, रागनी 10 सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक तनाव का तीखा चित्र प्रस्तुत करती है। **"दरबारां की नाच नचणिया, जयपुर की राणी बणगी"** जैसी पंक्ति पूरे कथानक का केंद्रीय द्वंद्व बन जाती है, जिसमें एक नर्तकी का रानी बनना सामंती मूल्यों के लिए चुनौती के रूप में उभरता है। **"रजपूतां में शोर माचग्या"** और **"सूर्य वंश के उज्ज्वल मुख पै, बेमाता काळा खिणगी"** जैसी पंक्तियाँ सामाजिक असंतोष, वंश-गौरव की चिंता और सांस्कृतिक अस्मिता के संकट को तीव्रता से व्यक्त करती हैं। इस रागनी में प्रयुक्त संवादात्मक शैली, जैसे **"कौण ठीक और कौण गलत"**, समाज के भीतर चल रहे नैतिक द्वंद्व को उद्घाटित करती है। यहाँ लेखक ने लोकभाषा के माध्यम से सत्ता, प्रतिष्ठा और प्रेम के बीच के संघर्ष को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। **"गुरु पालेराम कहै, इस छलणी में, ढोरा सूळसी छणगी"** जैसी पंक्ति न्याय-व्यवस्था की विडंबना को रूपक के माध्यम से उजागर करती है, जहाँ दोषी भी निर्दोष बनकर निकल जाते हैं।

रागनी 11 में कथा का केंद्र पुनः कला और उसकी सामाजिक स्वीकृति की ओर स्थानांतरित हो जाता है। **"सुगमसिंह लग्या साज बजाणे, सरस्वती नै लग्या मनाणे"** जैसी पंक्ति संगीत को आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रस्तुत करती है। **"छम छम छम छम पायल बोल्लै, जैसे बण में कोयल बोल्लै"** में उपमा अलंकार के माध्यम से रसकपूर के नृत्य और गायन की मधुरता को प्रकृति से जोड़ा गया है। **"मन्दा उँचा मध्यम बजाया... फेर एकदम सप्तम् पै आया"** जैसी पंक्तियाँ संगीत के तकनीकी पक्ष को भी उजागर करती हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि रचना केवल भावात्मक नहीं, बल्कि शास्त्रीय संगीत की गहन समझ पर आधारित है। इस रागनी में गुरु-शिष्य संबंध भी एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उभरता है, जहाँ **"गुरु पालेराम न्यूँ सोच में पड़ग्या"** के माध्यम से नव प्रतिभा के प्रति गुरु की आश्चर्य मिश्रित प्रतिक्रिया को व्यक्त किया गया है।

रागनी 12 इस शृंखला का सबसे व्यापक सांस्कृतिक आयाम प्रस्तुत करती है, जहाँ व्यंग्य, आलोचना और श्रद्धांजलि का अनूठा समन्वय देखने को मिलता है। **"ओ अमीरन बाई, तू महफ़िल में गाणे आई, तनै अक्कल कोन्या आई"** जैसी पंक्तियाँ व्यंग्यात्मक शैली में गायन की गुणवत्ता और कलाकार की बौद्धिक परिपक्वता पर प्रश्न उठाती हैं। यह व्यंग्य केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि उस व्यापक सांगीतिक परंपरा की रक्षा का प्रयास है, जिसमें ज्ञान, साधना और गुरु-परंपरा का विशेष महत्व है। **"गीत भजन और राग रागणी... प्रशंसा लख्मीचंद की"** जैसी पंक्तियाँ हरियाणवी रागनी परंपरा के महान पुरोधाओं के प्रति श्रद्धा

व्यक्त करती हैं। इसी प्रकार **"जाट मेहरसिंह फौज में होकै, देश के ऊपर मरग्या"** के माध्यम से वीर रस का समावेश कर रचना को बहुआयामी बना दिया गया है।

इस रागनी की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि इसमें अनेक लोक कवियों और सांस्कृतिक हस्तियों का उल्लेख किया गया है, जिससे यह रचना एक प्रकार का सांगीतिक अभिलेख (musical archive) बन जाती है। **"मांगेराम... दयाचन्द... मास्टर सतबीर... पालेराम..."** आदि नामों का समावेश यह दर्शाता है कि रसकपूर की कला केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि एक दीर्घ सांस्कृतिक परंपरा की निरंतरता है। इस प्रकार रागनी 12 न केवल एक प्रतियोगिता का वर्णन करती है, बल्कि यह लोक संस्कृति के सामूहिक स्मृति-बोध का भी सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है।

समग्र रूप से देखा जाए तो रागनी 9 से 12 तक का यह खंड अधराजण की कथा में भावात्मक उत्कर्ष, सामाजिक संघर्ष, और सांगीतिक परिपक्वता के त्रिवेणी संगम को प्रस्तुत करता है। इन रागणियों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि लोककाव्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि वह सामाजिक विमर्श, सांस्कृतिक संरक्षण और मानवीय संवेदनाओं के गहन विश्लेषण का सशक्त माध्यम भी है। यहाँ कथानक, भाषा, छंद और भाव—all मिलकर एक ऐसे सांस्कृतिक आख्यान की रचना करते हैं, जो समय और समाज दोनों के साथ संवाद स्थापित करता है।

रागणी 13 में कृष्णा कुँवरी के ड्योळे की स्वीकृति का प्रसंग केवल एक वैवाहिक प्रस्ताव का वर्णन नहीं, बल्कि राजनैतिक कूटनीति का काव्यात्मक रूपांतरण है। यहाँ रसकपूर का चरित्र एक निर्णायक मोड़ पर उभरता है, जहाँ वह व्यक्तिगत प्रेम से ऊपर उठकर राज्य हित को प्राथमिकता देती है। इस रागणी का कथानक संवादात्मक शैली में विकसित होता है, जो लोक-सांग की परंपरा के अनुरूप है। **"ड्योळा ल्यो स्वीकार पिया..."** जैसी टेक न केवल भावात्मक आग्रह का प्रतीक है, बल्कि वह एक रणनीतिक निर्णय की सांकेतिक अभिव्यक्ति भी है। इस प्रकार, रागणी 13 में कथात्मक संरचना और भावात्मक गहनता का संतुलित समन्वय दिखाई देता है, जहाँ स्त्री-स्वर नीति-निर्माण का माध्यम बन जाता है।

रागणी 14 में कथा का स्वर करुण-वीर रस के अद्वितीय संयोजन में रूपांतरित हो जाता है। कृष्णा कुँवरी का आत्मबलिदान यहाँ एक ऐतिहासिक घटना से आगे बढ़कर सांस्कृतिक आदर्श का रूप ग्रहण करता है। इस रागणी की कथात्मकता आंतरिक एकालाप और भावात्मक उत्कर्ष के माध्यम से निर्मित होती है, जहाँ एक किशोरी राजकुमारी का निर्णय सम्पूर्ण समाज की मर्यादा का प्रतिनिधित्व करने लगता है। **"मात पिता और मातृभूमि..."** जैसी टेक इस रचना के दार्शनिक आधार को स्पष्ट करती है, जिसमें व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र के त्रिकोणीय संबंध को स्थापित किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से यह रागणी रूपक, उपमा और यमक जैसे अलंकारों के माध्यम से भाव-प्रवणता को तीव्र करती है, जिससे पाठक या श्रोता के भीतर सहानुभूति और गौरव का समवेत संचार होता है।

रागणी 15 में कथात्मक प्रवाह पुनः एक नाटकीय मोड़ लेता है, जहाँ युद्ध, संकट और कूटनीति के बीच रसकपूर का साहसिक निर्णय केंद्र में आता है। इस रागणी की विशिष्टता इसकी संवादात्मक संरचना और नाटकीयता में निहित है। अमीर खान के समक्ष रसकपूर का आत्म प्रस्तुतीकरण एक स्त्री के रूप में नहीं, बल्कि एक नैतिक प्रतिनिधि के रूप में सामने आता है। "मेरी मंजिल महफिल कोन्या..." जैसी टेक इस बात को रेखांकित करती है कि उसका उद्देश्य व्यक्तिगत प्रतिष्ठा नहीं, बल्कि व्यापक शांति और संरक्षण है। यहाँ इतिहास और लोक कल्पना का समन्वय अत्यंत प्रभावशाली रूप में दिखाई देता है, जहाँ 'राखी' जैसे

सांस्कृतिक प्रतीक को कूटनीतिक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार, रागणी 15 स्त्री-शक्ति, संवाद और सांस्कृतिक कूटनीति का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है।

रागणी 16 में कथा का केंद्र महल की आंतरिक राजनीति और स्त्री-मन की जटिलताओं की ओर स्थानांतरित हो जाता है। फतेहकँवर पटराणी और रसकपूर के बीच का संघर्ष केवल व्यक्तिगत ईर्ष्या का परिणाम नहीं है, बल्कि वह सामंती संरचना, जातिगत दर्प और सत्ता-संतुलन की अभिव्यक्ति भी है। इस रागणी की कथात्मकता में नाटकीय विडंबना का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि पाठक या श्रोता को यह ज्ञात होता है कि फतेहकँवर की विनम्रता के पीछे एक गहन षड्यंत्र छिपा हुआ है, जबकि रसकपूर इस चाल से अनभिज्ञ रहती है। **बदनसिंह नै ल्यो सेवा में**... जैसी टेक इस षड्यंत्र का केंद्रबिंदु बन जाती है, जो धीरे-धीरे कथा को त्रासदी की ओर अग्रसर करती है। साहित्यिक दृष्टि से यह रागणी व्यंग्य, रूपक और सांकेतिक भाषा के माध्यम से सत्ता-चक्र की क्रूरता को उजागर करती है।

समग्रतः रागणी 9–16 की कथात्मक संरचना एक क्रमिक विकास को दर्शाती है, जहाँ आरंभिक प्रसंगों में प्रेम और प्रतिष्ठा का स्वर प्रमुख है, वहीं मध्य भाग में राजनीतिक रणनीति और आत्मबलिदान की तीव्रता बढ़ती है, और अंततः महल की षड्यंत्रकारी राजनीति कथा को एक त्रासद दिशा में ले जाती है। साहित्यिक दृष्टि से इन रागणियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी बहुरसात्मकता है, जिसमें वीर, करुण, श्रृंगार और शांति—सभी रसों का सुसंगत समन्वय दिखाई देता है। साथ ही, लोकभाषा की सहजता, संवादात्मक शैली, टेक की पुनरावृत्ति और अलंकारिक प्रयोग इन रचनाओं को न केवल गेय बनाते हैं, बल्कि उन्हें एक प्रभावशाली प्रदर्शनकारी साहित्य का रूप भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार, ये रागणियाँ केवल ऐतिहासिक घटनाओं का पुनर्स्मरण नहीं करतीं, बल्कि उन्हें सांस्कृतिक स्मृति और साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से एक स्थायी अर्थ प्रदान करती हैं।

पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण

अधराजण की हरियाणवी सांग-शैली की रागणियों (9–16) का पिंगल एवं छंदात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ये रचनाएँ पारंपरिक शास्त्रीय छंदशास्त्र और लोक-लयात्मकता के मध्य एक सशक्त सेतु का कार्य करती हैं। पिंगल शास्त्र, जो भारतीय काव्य में मात्रिक, वर्णिक एवं लयात्मक संरचनाओं के अनुशासन को परिभाषित करता है, इन रागणियों में कठोर शास्त्रीयता के रूप में नहीं, बल्कि एक लचीले, जीवंत और प्रदर्शनपरक ढाँचे के रूप में प्रकट होता है। रागणी 9 से 16 तक के पाठ का सूक्ष्म परीक्षण यह संकेत देता है कि कवि ने मात्राओं की सुसंगति, यति-विभाजन और तुकांत विन्यास को लोकगायन की आवश्यकताओं के अनुरूप रूपांतरित किया है, जिससे इन रचनाओं में गेयता, संप्रेषणीयता और भाव-प्रवणता का अद्वितीय संतुलन स्थापित होता है।

अधराजण की रागणियों की संरचना का गहन अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ये रचनाएँ केवल भावात्मक और कथात्मक दृष्टि से ही समृद्ध नहीं हैं, अपितु पिंगल शास्त्र की दृष्टि से भी अत्यंत सुसंगठित और परिपक्व हैं। रागनी 9 से 16 तक के छंद-विन्यास में वर्णिक और मात्रिक परंपराओं का एक संतुलित समन्वय दृष्टिगोचर होता है, जो हरियाणवी सांग-शैली की विशिष्ट पहचान है। इन रागणियों में प्रयुक्त छंद संरचना न तो पूर्णतः शास्त्रीय बंधनों में आबद्ध है और न ही पूर्णतः मुक्त; बल्कि यह एक ऐसी मध्यवर्ती लोक-छंद परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें शास्त्रीय अनुशासन और लोक-स्वाभाविकता का अद्भुत संतुलन उपस्थित है।

इन रागणियों की मात्रा-संरचना सामान्यतः 24 से 30 मात्राओं के मध्य संचरित होती है, जो पारंपरिक समवृत्त छंदों की अपेक्षा अधिक लचीली है। यह लचीलापन सांग-शैली के मंचीय प्रदर्शन की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए अपनाया गया है, जहाँ गायक को भावानुकूल विस्तार, विराम और पुनरावृत्ति की स्वतंत्रता अपेक्षित होती है। यति का विन्यास प्रायः "6+6+6+6" अथवा "6+8+8+6" के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जो न केवल वाक्य-खंडों को स्पष्ट करता है, बल्कि संवादात्मकता और नाटकीयता को भी सुदृढ़ करता है। इस प्रकार, यति यहाँ मात्र छंद का तकनीकी अवयव नहीं, बल्कि अर्थ-निर्माण का सक्रिय उपकरण बन जाती है।

तुकांत व्यवस्था का विश्लेषण यह दर्शाता है कि कवि ने अंत्यानुप्रास और आंतरिक तुकों का अत्यंत सजग प्रयोग किया है। **"पिया–सगाई–बिदाई"**, **"दूर–गरूर–नूर–मंजूर"** तथा **"चाही–भाई–हाणि"** जैसे तुकांत समूह ध्वन्यात्मक सामंजस्य के साथ-साथ भाव-संगति को भी पुष्ट करते हैं। यह ध्वनि-संरचना न केवल काव्य को श्रवणीय बनाती है, बल्कि दर्शक-श्रोता के मानस में स्थायी प्रभाव भी उत्पन्न करती है। **टेक** का बार-बार आवर्तन इन रागणियों की एक विशिष्ट छंदात्मक विशेषता है, जो लोकगायन की परंपरा में सामूहिक सहभागिता को प्रोत्साहित करता है और मुख्य भाव को स्मृति में स्थिर करता है।

अलंकारिक स्तर पर अनुप्रास, यमक, रूपक और उपमा का प्रयोग छंदात्मक संरचना के साथ गहरे रूप से अंतः संबद्ध है। उदाहरणतः **"मान–गुमान–बान–परान"** जैसे अनुप्रासिक संयोजन न केवल ध्वनि-सौंदर्य को समृद्ध करते हैं, बल्कि वीर और करुण रस की तीव्रता को भी बढ़ाते हैं। इसी प्रकार, **"मेवाड़ों की आन पै नाड़ कटया दयूं"** जैसे रूपक कथ्य को प्रतीकात्मक ऊँचाई प्रदान करते हैं, जहाँ छंद और अर्थ एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं। यमक और द्विअर्थी प्रयोग, विशेषकर **"धी और धरा"** जैसे पदों में, छंद के भीतर अर्थ-बहुलता का सृजन करते हैं, जो लोकभाषा की गहन अभिव्यक्तिपरक क्षमता को उजागर करता है।

रागनी 9 के छंद-विन्यास का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि इसमें सखी-संवाद शैली के अनुरूप लयात्मक प्रवाह को प्राथमिकता दी गई है। **"सुण सुमन प्यारी, तू कर तैय्यारी, आज मिलण की रात"** जैसी पंक्ति में लगभग 24 से 28 मात्राओं का संतुलित विन्यास है, जिसमें यति का निर्धारण प्रायः 8+8+6 या 10+8+6 के रूप में होता है। यह यति-विन्यास न केवल गायन में सहजता प्रदान करता है, बल्कि भावों की क्रमिक अभिव्यक्ति को भी सशक्त बनाता है। टेक **"हे बालम तै फेटूंगी, मेरी पहली सै मुलाकात"** का प्रत्येक बंद के अंत में पुनरावृत्त होना पिंगल के ध्रुवपद सिद्धांत का एक लोक-रूप प्रस्तुत करता है, जिससे रचना में स्थायित्व और लयात्मक एकरूपता बनी रहती है। तुकांत योजना में **"गात–रात–बात"** तथा **"मुलाकात–हाथ"** जैसे समतुकांत शब्दों का प्रयोग छंद की आंतरिक संगीतात्मकता को सुदृढ़ करता है।

रागनी 10 में छंद संरचना अपेक्षाकृत अधिक उन्मुक्त और संवादात्मक है, जो इसके कथानक के सामाजिक-राजनीतिक तनाव को अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त है। **"दरबारां की नाच नचणिया, जयपुर की राणी बणगी"** जैसी पंक्ति में लगभग 24–26 मात्राओं का विन्यास है, परंतु यहाँ यति का निर्धारण अधिक लचीला है, जो "4+4+6+6" अथवा "6+6+6+6" के रूप में परिवर्तित होता रहता है। यह परिवर्तनशीलता रचना के भीतर उपस्थित बहस, विरोध और संवाद को स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करती है। तुकांत योजना में **"बणगी–खिणगी–तणगी–ठणगी–छणगी"** जैसे पदानुप्रास और अंत्यानुप्रास का संयुक्त प्रयोग पिंगल के ध्वनि-सौंदर्य सिद्धांत को पुष्ट करता है। इस रागनी में टेक का प्रयोग एक केंद्रीय कथन के रूप में किया गया है, जो प्रत्येक बंद में भावों को पुनर्स्थापित करता है और श्रोताओं के मानस में कथानक के मूल द्वंद्व को स्थिर करता है।

रागनी 11 में छंदात्मक संरचना का एक विशिष्ट सांगीतिक आयाम विकसित होता है, जहाँ लय, स्वर और ताल का अंतर्संबंध पिंगल के छंद-विन्यास के साथ समन्वित दिखाई देता है। **सुगमसिंह लग्या साज बजाणे, सरस्वती नै लग्या मनाणे** जैसी पंक्ति में लगभग 24–26 मात्राओं का संतुलित विन्यास है, जिसमें 6+6+6+6" की यति योजना प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार की सममितीय संरचना संगीतात्मक प्रस्तुति के लिए अत्यंत उपयुक्त होती है, क्योंकि यह ताल के प्रत्येक खंड को स्पष्ट रूप से विभाजित करती है। **होओओओ, दे कै ऊँची तान** जैसी ध्वन्यात्मक आवृत्तियाँ छंद के शास्त्रीय ढाँचे में एक प्रकार की अलंकारिक विस्तार-भूमि का निर्माण करती हैं, जिसे पिंगल की दृष्टि से लय-दीर्घता (metrical elongation) के रूप में समझा जा सकता है। इस रागनी में तुकांत योजना गान–तान–पहचान–भगवान के माध्यम से एक पूर्ण ध्वनि-सामंजस्य स्थापित करती है, जो गायन के उत्कर्ष को सशक्त बनाती है।

रागनी 12 का छंद-विन्यास पिंगल शास्त्र की दृष्टि से अत्यंत रोचक है, क्योंकि इसमें व्यंग्य, आलोचना और स्तुति के विविध भावों को एक ही छंदात्मक ढाँचे में समाहित किया गया है। **ओ अमीरन बाई, तू महफ़िल में गाणे आई** जैसी पंक्तियों में लगभग 24–28 मात्राओं का विन्यास है, जबकि टेक **महफ़िल में गाणे वाळा भी कोए स्याणा चाहिए** अपेक्षाकृत संक्षिप्त (12–14 मात्राएँ) होकर एक प्रभावी ध्रुवपद का कार्य करती है। यह संरचना पिंगल के स्थायी और अंतरे के संबंध को लोक शैली में रूपांतरित करती है। यति-विन्यास प्रायः 6+6+6+6" के रूप में स्थिर रहता है, जिससे व्यंग्यात्मक कथन भी लयात्मक अनुशासन में बंधा रहता है। इस रागनी में पुनरुक्ति और टेक की आवृत्ति छंद की आंतरिक ऊर्जा को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है, जिससे मंचीय प्रस्तुति में निरंतरता और प्रभाव बना रहता है।

रागणी 13 से 16 के पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण में छंद-विन्यास, मात्रा-संतुलन, यति-प्रणाली तथा तुकांत-संरचना का परीक्षण यह सिद्ध करता है कि हरियाणवी सांग-परंपरा में छंद केवल सैद्धांतिक संरचना नहीं, बल्कि गेयता और प्रस्तुति की जीवंत इकाई है। इस दृष्टि से रागणी 13 और 14 अपेक्षाकृत संतुलित एवं नियमित छंद-योजना का परिचय देती हैं, जबकि रागणी 15 और 16 में भावोच्छ्वास के कारण लयात्मक लचीलापन अधिक स्पष्ट हो जाता है।

रागणी 13 की आरंभिक पंक्ति—

"किरशन कुँवरी मेवाड़ी का, ड्योळा ल्यो स्वीकार पिया

मात्रिक दृष्टि से लगभग 26–28 मात्राओं का विन्यास प्रस्तुत करती है, जिसमें **किरशन कुँवरी मेवाड़ी का** (प्रथम खंड) और **ड्योळा ल्यो स्वीकार पिया** (द्वितीय खंड) के मध्य स्वाभाविक यति (caesura) स्थित है। इसी प्रकार अगली पंक्ति—

"रजपुतां में धूम माचज्या, होज्या जय जयकार पिया

ध्वन्यात्मक पुनरावृत्ति (जय जयकार) के माध्यम से न केवल अनुप्रास को पुष्ट करती है, बल्कि टेक के रूप में लय का स्थिरीकरण भी करती है। यहाँ पिया पर समाप्ति तुकांत-संयोजन को एकरूपता प्रदान करती है। इस रागणी में नवयौवन भरपूर किरशना... तथा **मारवाड़ का राजा मरग्या...** जैसी पंक्तियाँ 6+6+6+6 की यति-योजना का अनुसरण करती हुई संवादात्मक लय उत्पन्न करती हैं, जो सांग-शैली की नाटकीयता को सुदृढ़ करती है।

रागणी 14 में छंद संरचना अधिक सघन भावात्मकता के साथ उपस्थित होती है। उदाहरणतः—

"मात पिता और मातृभूमि इन्ह का दर्जा एक समान

यह पंक्ति लगभग सममात्रिक संतुलन (26–28 मात्राएँ) के साथ त्रिपदीय अर्थ-विस्तार प्रस्तुत करती है। इसके साथ जुड़ी पंक्ति—

"बखत पड़े पै इन्ह तीनों पै करणी चाहिए ज्यां कुर्बान।

यति के स्तर पर "बखत पड़े पै" / "इन्ह तीनों पै" / "करणी चाहिए" / "ज्यां कुर्बान" जैसे खंडों में विभक्त होकर भाव की क्रमिक तीव्रता को रेखांकित करती है। इसी रागणी में—

"नभ से ऊँचा पिता बताया, धरती से बड़ी माता।

जैसी पंक्ति उपमा-अलंकार के साथ-साथ सममात्रिक लय को बनाए रखती है। यहाँ छंद की नियमितता करुण-वीर रस के संतुलन को संभव बनाती है, जिससे श्रोता के भीतर भावात्मक अनुगूंज उत्पन्न होती है।

इसके विपरीत, रागणी 15 में छंद का विन्यास अधिक लचीला और भाव प्रधान हो जाता है। उदाहरणतः—

"होओओ जगत सिंह राजा की राणी, मैं सूँ रसकपूर।

इस पंक्ति में "होओओ" का दीर्घ उच्चारण पारंपरिक मात्रा-गणना से परे जाकर मंचीय प्रभाव (performative elongation) को प्राथमिकता देता है। इसी प्रकार—

"मेरी मंजिल महफिल कोन्या, मनै जाणा सै घणी दूर।

में "मंजिल–महफिल" का आंतरिक अनुप्रास तथा "दूर" पर तुकांत समापन लय को बनाए रखते हैं, परंतु मात्रा-संतुलन में स्वाभाविक विस्तार दिखाई देता है। आगे—

"हुमायूँ बण्या था भाई, कर्मवती का।

जैसी पंक्ति अपेक्षाकृत छोटी है, जबकि इसके बाद—

"फर्ज निम्भादे तू भी, मर्द जती का।

लंबाई में संतुलन स्थापित करती है। यह असमानता शास्त्रीय त्रुटि न होकर संवादात्मक नाटकीयता का अंग है, जो सांग-प्रदर्शन में भाव-संचार को तीव्र बनाती है।

रागणी 16 में छंद और भी अधिक नाटकीय एवं व्यंजना-प्रधान हो जाता है। उदाहरणतः—

"अधराजण कर शान बाहण मेरी, करदे मन की चाही।

में 28–30 मात्राओं का अपेक्षाकृत विस्तृत विन्यास है, जो गंभीरता और आग्रह को प्रकट करता है। इसके साथ—

"बदनसिंह नै ल्यो सेवा में, मेरा चचेरा भाई।

तुकांत ("चाही–भाई") के माध्यम से ध्वन्यात्मक एकता स्थापित करता है। इसी रागणी में—

"तेरे आगै जोडे हाथ खड़ी सै, फतेहकँवर पटराणी।

पंक्ति यति के स्तर पर बहुखंडी संरचना ग्रहण करती है, जिससे विनम्रता और षड्यंत्र का द्वैत भाव एक साथ संप्रेषित होता है। आगे—

"चीड़ी चोंच भर ले ज्यागी तै, के घट ज्यावै दरिया।

में लोक-उपमा के माध्यम से छंद की लयात्मकता और अर्थ-व्यंजना का अद्भुत संयोजन दिखाई देता है। यहाँ मात्रा-विन्यास में हल्की असमानता होने पर भी ध्वनि-प्रवाह और तुकांत योजना (दरिया–जरिया–तरिया) छंद को सुसंगत बनाए रखते हैं।

इन रागणियों में टेक की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रागणी 13 में **"ड्योळा ल्यो स्वीकार पिया..."**, रागणी 14 में **"मात पिता और मातृभूमि..."**, रागणी 15 में **"मेरी मंजिल महफिल कोन्या..."**, तथा रागणी 16 में **"बदनसिंह नै ल्यो सेवा में..."** जैसी पुनरावृत्त पंक्तियाँ भाव-संकेन्द्रण का कार्य करती हैं। ये टेक

न केवल छंद की लय को स्थिर करती हैं, बल्कि कथानक के केंद्रीय भाव को श्रोता के मानस में दृढ़ता से स्थापित करती हैं।

तर्ज का चयन भी छंदात्मक विश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। **मैंने तुझको चाहा**... अथवा **ऐ मेरे वतन के लोगो**... जैसी लोकप्रिय धुनों पर आधारित रागणियाँ यह दर्शाती हैं कि कवि ने पारंपरिक पिंगल संरचना को आधुनिक श्रवण-संवेदना से जोड़ने का प्रयास किया है। इससे छंद की लयात्मकता और अधिक सुलभ एवं व्यापक हो जाती है, तथा रचना लोक-मानस में शीघ्रता से समाहित हो पाती है।

अंततः यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है कि रागणी 13–16 का पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि ये रचनाएँ शास्त्रीय छंदशास्त्र और लोक-प्रदर्शन की परंपरा के बीच एक सशक्त सेतु का निर्माण करती हैं। यहाँ मात्रा, यति, तुकांत और टेक—all मिलकर एक ऐसे जीवंत छंदात्मक ढाँचे का सृजन करते हैं, जिसमें भाव की प्रधानता के साथ-साथ लय का अनुशासन भी संरक्षित रहता है। इस प्रकार, अधराजण की रागणियाँ पिंगल शास्त्र के सिद्धांतों को केवल अनुसरण नहीं करतीं, बल्कि उन्हें लोक संस्कृति के सजीव अनुभव में पुनर्सृजित कर एक गतिशील और प्रासंगिक काव्य-परंपरा का निर्माण करती हैं।

रागणी 13 और 14 में जहाँ छंद संरचना अपेक्षाकृत संतुलित और नियमित है, वहीं रागणी 15 और 16 में भावों की तीव्रता के कारण मात्रा-विन्यास में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव दिखाई देता है। यह विचलन शास्त्रीय दृष्टि से त्रुटि न होकर, लोक-परंपरा की स्वीकृत स्वतंत्रता का द्योतक है, जहाँ भाव की प्रधानता छंद की कठोरता पर वरीयता प्राप्त करती है। विशेषतः रागणी 15 में संवादात्मक शैली और करुण-वीर रस के संयोग के कारण पंक्तियों की लंबाई और यति में लचीलापन स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है, जो मंचीय प्रस्तुति को अधिक प्रभावशाली बनाता है।

रागनी 13 से 16 (जिनका सम्यक् अवलोकन अधराजण की संपूर्ण संरचना के आधार पर किया जा सकता है) में छंद-विन्यास और भी अधिक परिपक्व और विविधता पूर्ण हो जाता है। इन रागणियों में वर्णिक और मात्रिक छंदों का मिश्रण, यति की लचीली संरचना, तथा तुकांत योजना की सुदृढ़ता यह दर्शाती है कि रचनाकार ने पिंगल शास्त्र के सिद्धांतों को केवल सैद्धांतिक रूप में नहीं, बल्कि व्यावहारिक और मंचीय प्रयोगों के माध्यम से आत्मसात किया है। इन रागणियों में टेक की भूमिका और भी अधिक सुदृढ़ हो जाती है, जहाँ वह केवल पुनरावृत्ति का माध्यम न रहकर भावों के संकेन्द्रण का केंद्र बन जाती है।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि रागणी 9–16 का पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण भारतीय लोककाव्य की उस सृजनात्मक परंपरा को उद्घाटित करता है, जिसमें शास्त्र और लोक, अनुशासन और स्वतंत्रता, तथा संरचना और संवेदना का अद्भुत समन्वय विद्यमान है। इन रागणियों में पिंगल शास्त्र केवल नियमों का संग्रह नहीं, बल्कि एक जीवंत काव्य-व्यवस्था है, जो समय, समाज और मंचीय आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को रूपांतरित करती रहती है। इस प्रकार, अधराजण की रागणियाँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि छंदशास्त्र के विकासशील और गतिशील स्वरूप की भी सशक्त साक्षी हैं।

चर्चा

प्रस्तुत अध्ययन में हरियाणवी सांग-शैली की रागणियों (विशेषतः रागनी 9–16) का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि लोककाव्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श का सशक्त उपकरण भी है। 'अधराजण' की रागणियाँ उस संक्रमणशील ऐतिहासिक क्षितिज को उद्घाटित करती हैं जहाँ परंपरा, सत्ता, स्त्री-अस्तित्व और नैतिकता के प्रश्न एक-दूसरे से अंतःक्रिया करते हुए दिखाई देते हैं। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष उभरता है कि रसकपूर और कृष्णा कुँवरी जैसे पात्र केवल कथा के अंग नहीं, बल्कि लोकचेतना में निहित स्त्री-शक्ति, आत्मनिर्णय और राजनीतिक विवेक के प्रतीक हैं, जो पितृसत्तात्मक संरचना के भीतर अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

रागणियों में निहित कथ्य यह भी संकेत करता है कि लोकभाषा में व्यक्त काव्य, औपचारिक इतिहास-लेखन की अपेक्षा कहीं अधिक संवेदनात्मक और बहुआयामी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उदाहरणतः, कृष्णा कुँवरी का आत्मबलिदान केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं रह जाता, बल्कि वह राजधर्म, कुल मर्यादा और मानवीय संवेदना के त्रिवेणी-संगम के रूप में पुनर्परिभाषित होता है। इसी प्रकार, रसकपूर का चरित्र एक नर्तकी से 'अधराजण' तक की यात्रा में स्त्री-अस्तित्व के बहुपरत रूपों—प्रेमिका, नीतिज्ञ, मध्यस्थ और त्याग मूर्ति—को समेटता है। यह परिवर्तन लोकसाहित्य में स्त्री की भूमिका के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है।

पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण के आधार पर यह भी स्पष्ट होता है कि रागणियों की संरचना केवल तकनीकी अनुशासन का पालन नहीं करती, बल्कि वह भावाभिव्यक्ति की अनुकूल लयात्मकता को प्राथमिकता देती है। 24–30 मात्राओं के लचीले विन्यास, 6+6+6+6 अथवा परिवर्तित यति-खंडों का प्रयोग, तथा टेक-प्रधान संरचना रागणियों को मंचीय प्रस्तुति के लिए अत्यंत प्रभावी बनाते हैं। इस प्रकार, छंद यहाँ स्थिर नियम नहीं, बल्कि भाव-प्रसारण का गतिशील माध्यम बन जाता है। अलंकारों—विशेषतः अनुप्रास, रूपक और यमक—का प्रयोग भी केवल सौंदर्य-वृद्धि तक सीमित नहीं, बल्कि कथ्य की तीव्रता और नाटकीयता को उभारने का कार्य करता है।

इस अध्ययन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि यह लोकसाहित्य को 'उच्च' और 'लोक' साहित्य के पारंपरिक द्वैत से मुक्त कर उसे एक वैध अकादमिक विमर्श के रूप में स्थापित करता है। हरियाणवी सांग-परंपरा, जो प्रायः उपेक्षित रही है, यहाँ एक सुसंगठित काव्य-प्रणाली और सामाजिक अभिव्यक्ति के रूप में उभरती है। साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि इन रागणियों में निहित ऐतिहासिक प्रसंग केवल अतीत का पुनर्स्मरण नहीं, बल्कि वर्तमान सामाजिक संरचनाओं के लिए भी प्रासंगिक संकेत प्रदान करते हैं—विशेषतः स्त्री-अधिकार, नैतिक निर्णय और सत्ता-संतुलन के संदर्भ में।

अंततः, यह कहा जा सकता है कि 'अधराजण' की रागणियाँ एक बहुस्तरीय पाठ प्रस्तुत करती हैं, जहाँ इतिहास, काव्यशास्त्र और लोक संस्कृति का अंतर्संबंध गहराई से प्रतिफलित होता है। यह अध्ययन न केवल हरियाणवी लोककाव्य की समृद्धि को रेखांकित करता है, बल्कि भारतीय साहित्यिक परंपरा में उसके स्थान को पुनर्स्थापित करने की दिशा में एक सार्थक प्रयास भी सिद्ध होता है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन हरियाणवी सांग-शैली की रागणियों (विशेषतः रागणी 9–16) के बहुआयामी विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट करता है कि लोककाव्य मात्र मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि एक सशक्त ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और वैचारिक अभिलेख भी है। 'अधराजण' प्रसंग में प्रस्तुत रागणियाँ स्त्री-चरित्रों के माध्यम से उस युग की जटिल राजनीतिक संरचनाओं, सामाजिक मूल्यों और नैतिक द्वंद्वों को अत्यंत प्रभावी ढंग से उद्घाटित करती हैं। रसकपूर, कृष्णा कुँवरी और फतेहकँवर जैसे पात्रों के माध्यम से यह शोध यह स्थापित करता है कि लोकसाहित्य में स्त्री केवल भावनात्मक प्रतीक नहीं, बल्कि सक्रिय नीति निर्माता, निर्णयकर्ता और सांस्कृतिक वाहक के रूप में भी उपस्थित है।

पिंगल शास्त्र और छंद संरचना के विश्लेषण से यह भी सिद्ध होता है कि इन रागणियों में लय, मात्रा और यति का प्रयोग अत्यंत संतुलित और उद्देश्यपरक है, जो न केवल गेयता को सुदृढ़ करता है, बल्कि भावाभिव्यक्ति को भी अधिक प्रभावशाली बनाता है। देशज तर्ज, पुनरावृत्त टेक, और तुकांत संरचनाएँ मिलकर एक ऐसी काव्यात्मक संरचना निर्मित करती हैं, जो मंचीय प्रस्तुति और सामूहिक स्मृति दोनों में समान रूप से प्रभाव छोड़ती है। अनुप्रास, रूपक, यमक और उपमा जैसे अलंकारों का सघन प्रयोग इन रचनाओं को सौंदर्यात्मक ऊँचाई प्रदान करता है।

साथ ही, यह अध्ययन यह भी रेखांकित करता है कि सांग-परंपरा में निहित सांस्कृतिक चेतना, नैतिकता और ऐतिहासिक स्मृति आज भी प्रासंगिक है। रागणियाँ सामाजिक संवाद का माध्यम बनकर सत्ता, जाति, लिंग और नैतिकता जैसे प्रश्नों पर विचार करने की प्रेरणा देती हैं। इस प्रकार, यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रागणी 9–16 का यह विश्लेषण लोकसाहित्य के अकादमिक अध्ययन में एक महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है, जो न केवल साहित्यिक विमर्श को समृद्ध करता है, बल्कि भारतीय लोक संस्कृति की गहन समझ को भी सुदृढ़ करता है।

References (APA Style)

References (APA Style)

आशोधिया, आनन्द कुमार। (2025)। *अधराजण: हरियाणवी लोक रागणियों का संग्रह—रागणी सांग शैली में एक लोकगाथा (साहित्यिक विश्लेषण सहित), द्वितीय संस्करण।* अविकावनी प्रकाशन।

आशोधिया, आनन्द कुमार। (2026)। *अधराजण की हरियाणवी सांग-शैली रागणियाँ: पिंगल शास्त्र एवं लोक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (रागणी 1–8 के संदर्भ में)।* (अप्रकाशित शोध-पत्र / शोध आलेख)।

आशोधिया, ए. के. (2026a). *हीर–राँझा की हरियाणवी रागणी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागणी 1–7 के संदर्भ में).* द एकेडमिक, 4(3)।

आशोधिया, ए. के. (2026b). *हीर–राँझा की हरियाणवी रागणी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागणी 8–16 के संदर्भ में).* शोधपत्र।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद। (1990)। *हिंदी साहित्य की भूमिका।* राजकमल प्रकाशन।

मिश्र, कृष्ण कुमार। (2007)। *भारत की लोक परंपराएँ और मौखिक परंपरा।* कॉन्सेप्ट प्रकाशन।

ओझा, गौरीशंकर हीराचंद। (1999)। *राजपूताना का इतिहास (खंड 1–3)।* राजस्थान ग्रंथागार।

रामानुजन, ए. के. (1999)। *भारत की लोककथाएँ: बाईस भाषाओं की मौखिक कथाओं का चयन*। पैंथियन प्रकाशन।

शर्मा, रामनारायण। (2002)। *पिंगल शास्त्र: सिद्धांत और प्रयोग*। साहित्य भवन।

सिंह, नामवर। (2006)। *कविता के नए प्रतिमान*। राजकमल प्रकाशन।

टॉड, जेम्स। (2001)। *राजस्थान के इतिहास और प्राचीनता (खंड 1–2, मूल प्रकाशन 1829)*। रूपा एंड कम्पनी।

यादव, रामफल। (2010)। *हरियाणा का लोक साहित्य*। हरियाणा साहित्य अकादमी।

कुमार, सुरेश। (2015)। *लोकनाट्य परंपरा और हरियाणा का सांग*। नेशनल पब्लिशिंग हाउस।